अमर उजाला । नई दिल्ली । मंगलवार । 28 फरवरी 2012

आधार से किसका उद्धार

वित्तीय समावेशन देने के दावे में ही हैं कई खामियां

रीतिका खेड़ा

आधार नंबर, यानी यूनीक आइडेंटिफिकेशन नंबर का मकसद उन लोगों को पहचान देना है, जिनके पास पहचान पत्र नहीं है। इस परियोजना के प्रमुख नंदन नीलेकणि के शब्दों में, सार्वजनिक सेवाओं को बेहतर करने के लिए लोगों को इसमें शामिल करना और जिनके पास पहचान पत्र नहीं है, उन्हें मौका देना, इसका मकसद है। सरकारी योजनाओं के संदर्भ में लोगों को शामिल करने की परिभाषा और अनुभवों को हम कुछ उदाहरण से समझ सकते हैं।

इसकी शुरुआत दिल्ली की अमीना की आपबीती से करते हैं। अमीना की शादीशुदा बेटी को आधार केंद्र से इसलिए लौटा दिया गया था, क्योंकि उसके पास नामांकन के लिए पर्याप्त पहचान संबंधी प्रमाण नहीं थे। उसे प्रथम श्रेणी के सरकारी अधिकारी से सर्टिफिकेट लाने की सलाह दी गई, पर वह ऐसा नहीं कर पाई। इन सबके बीच अमीना ने एक रास्ता खोज निकाला। उसने 200 रुपये घूस देकर डाकघर में अपनी बेटी का खाता खुलवाया और डाकघर के पासबुक से उसका आधार कार्ड बन गया।

अमीना की कहानी वास्तविक हालत बयां करती है। दरअसल, भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण का दावा है कि यह वित्तीय समावेशन की सुविधा देगा, क्योंकि प्राधिकरण, पंजीकरण के समय स्वतः बैंक खाता खोलने की अनुमति देता है। अमीना के मामले में उलटा हुआ। उसने पहले खाता खोला, फिर आधार नंबर हासिल किया। इससे साफ है कि आधार नंबर लेने के प्रावधान- जैसे, किसी सरकारी अधिकारी से प्रमाणपत्र लाना, गरीबों के लिए व्यावहारिक विकल्प नहीं हैं।

यूआईडी डाटाबेस में शामिल किए जाने के अलावा, क्या समावेशन का मतलब एक वैधानिक सरकारी पहचान पत्र हासिल करने से ज्यादा नहीं होना चाहिए? आधार परियोजना से जुड़े अधिकारी अकसर यह दावा करते हैं कि गरीबों को सरकारी योजनाओं का लाभ इसलिए नहीं मिल पाता, क्योंकि उनके पास पहचान पत्र नहीं होता। सरकारी योजनाओं के लाभ से गरीबों के वंचित रहने के कारणों में बेशक यह एक कारण है, लेकिन कई योजनाओं में सरकार ने भी लाभार्थियों के लिए एक सीमा तय कर रखी है। इनमें सामाजिक सुरक्षा से जुड़ी महत्वपूर्ण योजनाएं, जैसे सार्वजनिक वितरण प्रणाली, विधवा या वृद्धावस्था पेंशन और राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना शामिल हैं। इन योजनाओं में यह सीमा जनसंख्या में कुपोषित लोगों पर या अस्वस्थ लोगों पर आधारित नहीं है। बल्कि इसमें जनसंख्या का वह हिस्सा शामिल है, जो 'गरीबी रेखा' से नीचे जीवन बिताते हैं। और सरकारी गरीबी रेखा के मुताबिक, ग्रामीण इलाकों में रोजाना 26 रुपये और शहरी इलाकों में रोजाना 32 रुपये से कम खर्च वाले ही गरीब हैं।

इस तरह की कठोर सीमाएं तय कर देने से सरकारी योजनाओं के लाभ से एक बड़ा तबका वंचित रह जाता है। आधार अधिकारियों का यह दावा भी संदिग्ध है कि इससे सही लोगों को लाभ मिलेगा। इसके पीछे वजह यह है कि हमारे यहां तीन तरह के फर्जी कार्ड हैं। पहला 'भूतों' के कार्ड, यानी ऐसे लोग जिनकी मौत हो चुकी है, पर कार्ड पर वे जिंदा हैं। दूसरा डुप्लीकेट कार्ड, जिसमें एक परिवार/सदस्य के नाम एक से ज्यादा कार्ड आवंटित हैं। तीसरा गरीबों को चिह्नित करते समय गलतियों के शिकार लाभार्थी, जिसमें लोग कार्ड पर गरीब हैं, पर वास्तव में ऐसा नहीं है या वास्तव में गरीब हैं, लेकिन जिन्हें एपीएल या गरीबी रेखा से ऊपर घोषित किया गया है। इससे साफ है

मनरेगा के भुगतान को आधार से जोड़ने से आबादी का बड़ा हिस्सा योजना से वंचित रह जाएगा।

कि आधार बायोमीट्रिक की मदद से 'भूतों' के कार्ड और डुप्लीकेट कार्ड से तो मुक्ति दिला सकता है, लेकिन उन मामलों में कुछ नहीं किया जा सकता, जिसमें गरीब न होते हुए भी व्यक्ति को गरीब दिखा दिया जाता है, क्योंकि बॉयोमीट्रिक और आधार नंबर में हमारी आर्थिक स्थिति के बारे में कुछ नहीं कहा गया है।

ज्यादा से ज्यादा लोगों के समावेशन के अच्छे उद्देश्य से शुरू की गई आधार परियोजना एक बड़े तबके को सरकारी योजनाओं के लाभ से वंचित कर सकती है। उदाहरण के लिए, आधार के साथ मनरेगा के तहत मिलने वाली मजदूरी को जोड़ने की योजना है, जिसमें काम करने वाले व्यक्ति के पास जॉब कार्ड के साथ आधार नंबर भी होना चाहिए। इस समय कुल आबादी के पांचवें हिस्से को ही आधार नंबर मिल सका है। यदि मनरेगा के तहत मिलने वाली मजदूरी के भुगतान के लिए आधार नंबर को अनिवार्य बना दिया जाएगा, तो एक बड़ी आबादी को इस योजना के तहत काम नहीं मिल सकेगा। यदि आधार कार्ड को अनिवार्य बनाए बगैर मनरेगा के तहत मिलने वाली मजदूरी के भुगतान के लिए बिजनेस कॉरसपोंडेंट मॉडल का इस्तेमाल किया जाए, तो इसमें बैंक द्वारा नियुक्त कंपनियों के जरिये - जिन्हें उपभोक्ता सेवा प्रदाता कहा जाता है- मजदूरों को उनका भुगतान उनके गांव में ही हो जाएगा। झारखंड में ऐसा शुरू किया जा रहा है, पर यह मॉडल बहुत विश्वसनीय नहीं है। आंध्र प्रदेश में अन्य तरीकों के साथ इस मॉडल का प्रयोग किया गया था, जिसमें पाया गया कि इसकी तुलना में डाकघरों के जरिये भुगतान की निगरानी करना ज्यादा आसान है। इसके अलावा हरियाणा में मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में इलेक्ट्रॉनिक बेनिफिट ट्रांसफर स्कीम की दिसंबर, 2011 में की गई राज्य स्तरीय समीक्षा में कहा गया कि बैंकों द्वारा नियुक्त कंपनियों का काम ठीक नहीं है। कंपनी द्वारा नियुक्त बिजनेस कॉरसपॉन्डेंट महीनों तक गांव नहीं गए, या उनका वहां जाने का समय तय न होने की वजह से लोगों को परेशानी उठानी पड़ी।

अमीना की कहानी से कई बातें साफ हो जाती हैं। मसलन यदि यूआईडी का मकसद लोगों को पहचान देना है, तो पंजीकरण की प्रक्रिया मौजूदा डाटाबेस, जैसे मतदाता पहचान पत्र से शुरू होनी चाहिए, वे कितनी ही अपूर्ण और गलत क्यों न हों। इसके अलावा पंजीकरण में शुरुआत से उन लोगों पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जो इस प्रक्रिया से अब तक बाहर हैं। कुल मिलाकर सामाजिक कल्याण कार्यक्रमों के साथ आधार नंबर को जोड़ना- वह चाहे अनिवार्य हो या दूसरे रूप में हो- अनजाने में गरीबों को इसके फायदे से महरूम कर देना है।

(लेखिका आईआईटी दिल्ली में अर्थशास्त्र विभाग से संबद्ध हैं)

आधी आबादी से जुड़े कानून की उपेक्षा

अलका आर्य

बीच बहस में

चुनावी फिजा में मायावती, सोनिया गांधी, प्रियंका गांधी, उमा भारती व सुषमा स्वराज की तसवीरें और राजनीतिक बयान सुर्खियों में है, मगर महिला सशक्तिकरण का भ्रमजाल फैलाने वाली इस मौसमी कवायद में आधी आबादी से जुड़ा एक महत्वपूर्ण मुद्दा नजरंदाज कर दिया गया है। 'घरेलू हिंसा महिला संरक्षण कानून, 2005' को लागू हुए पांच वर्ष बीत चुके हैं। किसी भी कानून का मूल्यांकन करने के लिए पांच साल की अवधि कम नहीं होती, पर इस कानून की स्थिति के बारे में खुलासा एक हालिया रिपोर्ट से होता है।

लायरर्स क्लैक्टिव वीमेन्स राइट्स इनिसिएटिव नामक संस्था ने अपनी 'स्टेइंग एलाइव' नामक रिपोर्ट में कहा है कि अगर वास्तव में घरेलू हिंसा की शिकार महिलाओं को इंसाफ दिलाने वाले मकसद को पूरा करना है, तो केंद्र व राज्य सरकारों को इसे गंभीरता से लेना होगा, और इसे लागू कराने में सहयोग देने वाली संस्थाओं को अपनी भूमिका को समझना जरूरी है। गौरतलब है कि इस कानून में महिलाओं के खिलाफ होने वाली शारीरिक, मानसिक, भावात्मक, आर्थिक और यौनिक हिंसा को शमिल किया गया है। यह कानून महज पत्नियों पर ही लागू नहीं होता, बल्कि इसके दायरे में उन संबंधों को भी मान्यता दी गई है, जिसमें स्त्री-पुरुष बिना शादी किए पति-पत्नी की तरह लंबे समय से साथ रह रहे हों। यही नहीं इसमें मां, बहन व बेटी भी शमिल हैं। इसमें कहा गया है कि घर चाहे पति का हो या न हो, पत्नी या बिना शादी के साथ रहने वाली स्त्री को घर से नहीं निकाला जा सकता। 'निवास का अधिकार' इस बिल का महत्वपूर्ण पहलू है और राज्य सरकारों को इसे प्रभावकारी तरीके से लागू कराने के लिए अपने यहां पूर्णकालिक संरक्षण अधिकारी, सेवा प्रदात्ता, शेल्टर होम व चिकित्सीय सुविधाएं प्रदान करनी होंगी। इसके अलावा पुलिस को भी लैंगिक संवेदनशील बनाना होगा। मगर राज्य सरकारें अपनी जिम्मेदारी किस तरह निभा रही हैं, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इसके संबंध में जानकारी भेजने वाले राज्यों की संख्या में कमी आई है। स्टेइंग एलाइव की 2011 की रिपोर्ट के लिए सिर्फ 15 राज्यों ने सूचनाएं भेजी, जबकि 2008 एवं 2009 के क्रमशः पहली व दूसरी रिपोर्ट के लिए सभी राज्यों ने सूचनाएं भेजी थीं।

पांच साल बीतने के बाद भी इसे लागू करने वाली संस्थाओं में कानून को लेकर जो ज्ञान व स्पष्टता दिखनी चाहिए थी, वह नहीं है। पुलिस की भूमिका हमेशा की तरह संदेहास्पद नजर आ रही है। लैंगिक संवेदनशीलता का प्रशिक्षण मिलने के बावजूद पुलिस का रवैया पीड़ित महिला को समझा-बुझाकर घर वापस भेजने वाला ही है। पुलिस पीड़ित महिला को उसके अधिकारों और वैधानिक विकल्पों के बारे में जानकारी तक मुहैया नहीं कराती। न्यायपालिका अब अपने फैसलों के जरिये इसके लक्ष्य को पूरा करने की जिम्मेदारी का निर्वाह करने लगी है।

बेशक कुछ रुझान व बदलाव सकारात्मक हैं, पर पर्याप्त बजट की कमी इस कानून को प्रभावी तरीके से अमल में लाने में एक बड़ी अड़चन है। बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड, राजस्थान व चंडीगढ़ ने इसके लिए संसाधनों का आवंटन तक नहीं किया है। जबकि राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2005-06 के अनुसार, महिलाओं के खिलाफ हिंसा के अधिक मामले इन राज्यों में ही दर्ज किए गए थे। राज्यों में बजट आवंटन में बीते तीन-चार वर्षों में किसी बड़े बदलाव का न होना राज्य सरकारों की जवाबदेही पर सवालिया निशान है। लायरर्स क्लैक्टिव संस्था के अनुसार इसके लिए करीब 1,522 करोड़ रुपये की जरूरत होगी।

भारत को इस कानून को बनाने में 14 साल लगे और उसे लागू हुए अब पांच वर्ष बीत भी गए हैं, लेकिन कहीं पुरुषवादी सोच, तो कहीं बजट की कमी के चलते अपेक्षित असर नहीं दिखाई पड़ता। केंद्र व राज्य सरकारें देश की आधी आबादी के पक्ष में कानून बनाकर ही आश्वस्त नहीं हो सकतीं, बल्कि उनकी जवाबदेही इसे प्रभावी तरीके से लागू कराने और समाज में उसके नतीजे दिखाने की भी है।

संपादकीय
अमर उजाला

जीवनदायिनी परियोजना में देरी

कछुआ चाल से आगे बढ़ रही नदियों को जोड़ने वाली महत्वाकांक्षी परियोजना पर सर्वोच्च अदालत के निर्देश से साफ है कि केंद्र और राज्यों की सरकारें इसे गंभीरता से नहीं ले रही हैं। प्रधान न्यायाधीश एस एच कपाड़िया की अगुआई वाली तीन सदस्यीय पीठ ने इस परियोजना पर काम करने के लिए न केवल एक उच्च अधिकार प्राप्त समिति का गठन किया है, बल्कि इसे समय पर पूरा करने के साफ निर्देश भी दिए हैं। सरकारों के काम करने का तरीका कुछ ऐसा हो गया है कि उन्हें हरकत में लाने के लिए अदालतों को आगे आना पड़ रहा है। यह प्रवृत्ति हाल के समय में कुछ ज्यादा ही बढ़ गई है। नदियों को जोड़ने वाली परियोजना के मामले में यह सुस्ती कुछ ज्यादा ही लंबी हो गई है। 2002 में जब देश के कुछ हिस्सों में भयंकर सूखा पड़ा था, तब अटल बिहारी वाजपेयी की अगुआई वाली एनडीए सरकार ने नदियों को जोड़ने वाली इस महत्वपूर्ण परियोजना की पेशकश की थी, मगर हाल यह है कि एक दशक बीतने के बावजूद आज भी यह योजना शुरुआती चरण में ही है। इस परियोजना को हिमालयी और प्रायद्वीपीय क्षेत्रों के रूप में दो हिस्सों में बांटा गया था, जिसके जरिये गंगा और ब्रह्मपुत्र तथा दक्षिण में महानदी और गोदावरी को उनकी सहायक नदियों से जोड़ने की योजना थी। असल में यह विचार देश में वर्षा जल के अपर्याप्त संचय और असंतुलित पर्यावरण से उपजा। देश में सर्वाधिक पानी ब्रह्मपुत्र और गंगा में होता है, मगर बारिश के मौसम में इनका अतिरिक्त पानी समुद्र में चला जाता है। इसके अलावा सीमावर्ती क्षेत्रों की नदियों का पानी पड़ोसी देशों में चला जाता है। अकसर होता यह है कि देश के पूर्वी और उत्तरी हिस्से तो बाढ़ से जूझ रहे होते हैं, और पश्चिमी और दक्षिणी-पूर्वी हिस्से सूखे से। बेशक इस परियोजना पर काफी लागत आएगी, पर नदियों को आपस में जोड़ने से यह असंतुलन दूर किया जा सकता है। यह योजना सिर्फ खेती या सिंचाई के लिहाज से महत्वपूर्ण नहीं है, इसके जरिये पनबिजली भी पैदा की जा सकेगी। प्रधानमंत्री ने हाल ही में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की स्वर्ण जयंती के मौके पर चिंता जताई थी कि खेती के क्षेत्र में होने वाले शोध और नई तकनीक की जानकारी किसानों तक नहीं पहुंच पाती है। मगर हकीकत यह है कि हमारे देश के अधिसंख्यक किसान आज भी पानी के लिए मानसून पर निर्भर हैं। उनके लिए यह परियोजना वरदान साबित हो सकती है। उम्मीद की जानी चाहिए कि सर्वोच्च अदालत के निर्देश के बाद इस जीवनदायिनी परियोजना में और देरी नहीं होगी।

नदियों को जोड़ने की योजना खेती या सिंचाई के लिहाज से नहीं, बिजली उत्पादन के लिए भी जरूरी है।

edit@amarujala.com

अंतर्यात्रा

आध्यात्मिक परिवार

एक महात्मा वन में अकेले बैठे थे। अचानक राजा अपने सहयोगियों के साथ उधर से निकला। उसने घोड़े से उतरकर महात्मा को प्रणाम कर पूछा, 'महात्मन, इस वियाबान जंगल में आप अकेले बैठे हैं। क्या हिंसक पशुओं का भय नहीं है?' महात्मा ने जवाब दिया, 'मैं अकेला कैसे हूं। मेरा परिवार मेरे साथ है।'

राजा ने आश्चर्य से पूछा, 'यहां कोई दिखाई नहीं दे रहा। कहां हैं परिवारजन?' महात्मा ने कहा, 'राजन, हर वस्तु साक्षात दिखाई नहीं देती। मेरे परिवार के सदस्य मेरे अंदर हैं।' इस जवाब से राजा उलझन में पड़ गया। उसका भ्रम दूर करते हुए महात्मा ने कहा, 'धैर्य मेरा पिता, क्षमा मेरी माता, दया मेरी बहन, ज्ञान मेरा आहार, दिशाएं मेरे वस्त्र, तपस्या मेरे रक्षक और शांति मेरी सहचरी है।' राजा को यह बात समझ में नहीं आई। उसने फिर पूछा, 'आपके पिता तो जन्म देने वाले होंगे। धैर्य कैसे पिता हो गए?' महात्मा ने कहा, 'पिता इस शरीर के जन्मदाता हैं, जबकि धैर्य मेरे आध्यात्मिक पिता हैं। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र के शरीर की रक्षा करता है, उसी प्रकार धैर्य और क्षमा पिता-माता की तरह मनुष्य की आत्मा की रक्षा करते हैं।' कुछ क्षण रुककर वह फिर बोले, 'राजन, आपका विशाल परिवार है, किंतु क्या उनमें से कोई आपके साथ जाएगा? लेकिन मेरे आध्यात्मिक परिवार का कोई भी सदस्य मेरा साथ कभी छोड़कर नहीं जाता। धैर्य, क्षमा आदि परलोक में भी सुख पहुंचाते हैं।'

राजा ने संत के वचन सुनकर कहा, 'महात्मन वास्तव में आपका परिवार महान है। मैं उन्हें दंडवत प्रणाम करता हूं।'

शिवकुमार गोयल

आज का बयान

समुद्री लूटपाट के मामले चिंताजनक तरीके से बढ़ रहे हैं। जलदस्यु तो केवल सामने दिख रहे हैं, जबकि उसके पीछे शक्तिशाली लोग हैं।

- ए के एंटनी

बाकी ने कहा

तालिबान सहित सभी अफगान समूहों से यह अपील करना कि वे शांति प्रक्रिया में शामिल हों, बेहतर कदम है, पर सबसे पहले प्रधानमंत्री गिलानी को अमेरिका से बात करनी चाहिए, ताकि तालिबान की मांग पूरी हो सके।

- द नेशन, पाकिस्तान

खुली खिड़की

द आर्टिस्ट

अमेरिका के लास एंजेल्स में आयोजित 84वें ऑस्कर समारोह में सर्वश्रेष्ठ फिल्म का खिताब फ्रांसीसी फिल्म *द आर्टिस्ट* को मिला है। इसके अलावा इस फिल्म को सर्वश्रेष्ठ अभिनेता, सर्वश्रेष्ठ निर्देशन सहित चार अन्य विधाओं में भी ऑस्कर मिले हैं। पर इन सबके अतिरिक्त यह फिल्म इसलिए सुर्खियों में है, क्योंकि यह पूरी तरह मूक (साइलेंट) और ब्लैक ऐंड ह्वाइट (श्वेत-श्याम) फिल्म है।

द आर्टिस्ट पिछले वर्ष की फिल्म है, जिसका निर्देशन माइकल हजानाविशियस ने किया है। माइकल फ्रेंच में ही *ओएसएस 117 : काहिरा, नेस्ट ऑफ स्पाइस* जैसी कॉमेडी जासूसी फिल्म बना चुके हैं। वह इस फिल्म के लेखक भी हैं। *द आर्टिस्ट* में ज्यां डूज्यारडिन, जिन्हें सर्वश्रेष्ठ अभिनेता का ऑस्कर मिला है, और बेरेनाइस बेजो का अभिनय है। हॉलीवुड के 1927 से लेकर 1932 के दौर को समेटती यह फिल्म मूक फिल्म के एक मझे कलाकार और एक उभरती अदाकारा के संबंधों को सामने रखती है। इस कहानी को बिना आवाज दिए अदायगी से इतनी खूबसूरती से परोसा गया है कि न सिर्फ कला समीक्षकों की वाहवाही इसे मिली है, बल्कि एकेडमी पुरस्कार के अलावा कई अन्य पुरस्कार भी इसकी झोली में आए हैं। पिछले वर्ष गोल्डन ग्लोब की छह श्रेणियों में इसका नामांकन किया गया था, जो सर्वाधिक था। इसमें इसे तीन पुरस्कार मिले। इसी तरह बाफ्टा पुरस्कारों की 12 श्रेणियों में इसका नामांकन किया गया, जिसमें इसके हिस्से सात पुरस्कार आए थे।

द आर्टिस्ट महज 100 मिनट की फिल्म है, जिसकी लागत 1.5 करोड़ अमेरिकी डॉलर है। दिलचस्प है कि ऑस्कर के इतिहास में *द आर्टिस्ट* दूसरी ऐसी मूक फिल्म है, जिसे सर्वश्रेष्ठ फिल्म का पुरस्कार मिला है। इससे पहले *विंग्स* को यह सम्मान मिल चुका है। *विंग्स* 1927 की फिल्म है, जो प्रथम विश्व युद्ध के फाइटर पायलट की कहानी है।

पत्र

बेतुका बयान

अरविंद केजरीवाल ने संसद पर जो टिप्पणी की है, वह निंदनीय है। बेशक संसद में कई ऐसे तत्व भी पहुंचे हैं, जो सदन की मर्यादा को चोट पहुंचाते हैं, पर इसका यह मतलब नहीं कि पूरी संसदीय प्रणाली को ही कठघरे में खड़ा कर दिया जाए। टीम अन्ना के चाणक्य माने जाने वाले अरविंद का यह कूटनीतिक बयान उचित नहीं माना जा सकता।

सुब्रत, ई-मेल से

कर्नाटक का संकट

कर्नाटक में जिस तरह येदियुरप्पा गुट हावी होता जा रहा है, उससे ऐसा लग रहा है कि कर्नाटक भाजपा में सब कुछ ठीक नहीं है। अगर भाजपा को अपना यह गढ़ बचाना है, तो उसे वहां का विवाद जल्दी से जल्दी सुलझाना चाहिए।

दिवाकर, ई-मेल से

इबारत

मूर्ख व्यक्ति अपनी वाचालता से पहचाना जाता है, जबकि बुद्धिमान व्यक्ति मौन रहने से।

- पाइथागोरस

भाई भाई का प्रेम

तमाशा

भारतीय इतिहास में भाई की बड़ी महत्ता रही है। भाई की खातिर भाई जान पर खेल जाया करते थे। राम को वनवास भेजने वाली सगी मां को एक सौतेला भाई आजीवन क्षमा नहीं कर पाता और स्वयं राम की पादुकाएं सिंहासन पर रखकर वनवासी-सा जीवन चौदह वर्षों तक व्यतीत करता है। दूसरा, अपनी नवब्याहता पत्नी को छोडकर भाई की सेवा में वन चला जाता है।

फिल्मों में भी भाई-भाई को लेकर अनेक रोचक कहानियां आती रहीं हैं। अलग-अलग विचारधारा और चरित्र के भाई अंत में एक-दूसरे के शुभचिंतक हो जाते हैं। लेकिन वास्तविक जीवन में भ्रातृ प्रेम के ऐसे सच्चे प्रसंग कभी-कभार ही दिखते हैं।

इसी भ्रातृ प्रेम का निर्वाह करते हुए दो युवक पुलिस आरक्षक की परीक्षा देते हुए इंदौर में पकड़ लिए गए। यह हमारी सामाजिक कमजोरी ही कही जाएगी कि कानून के तहत उनका केस बना दिया गया। एक महान परंपरा, जो साकार होने जा रही थी, नासमझ निरीक्षकों की नादानी के कारण संभव नहीं हो पाई।

बड़ा जालिम है यह जमाना। जब-जब भाई ने भाई के लिए कुछ करना चाहा है, तब-तब फच्चर फंसाया गया है।

बड़ा जालिम है यह जमाना। जब-जब भाई ने भाई के लिए कुछ करना चाहा है, तब–तब फच्चर फंसाया गया है। कुछ वर्ष पूर्व भी एक भाई के साथ ऐसा ही हुआ था। संयोग से वह भी पुलिसकर्मी था। उसने अपनी छुट्टी के लिए विभाग को आवेदन किया, तो स्वीकृत नहीं हुई। तब अंततः भाई ही भाई के काम आया। उसने अपने छोटे भाई को वरदी पहनाई और ड्यूटी पर तैनात कर दिया। लेकिन वही हुआ, भाई का भाई से यह प्रेम जमाने की कुटिल निगाहों में आ गया।

दोषी वही है, जो पकड़ा जाए। ये भाई पकड़ लिए गए इसलिए अपराधी हो गए। वे अनेक लोग, जो विभिन्न योजनाओं में दूसरों के हकों का लाभ ले रहे हैं, निर्दोष हैं।

भूल गए हैं हम अपनी महान संस्कृति को, जब एक भाई दूसरे भाई की पादुकाएं सिंहासन पर रखकर राजकाज चलाया करता था। और अब जब एक भाई वरदी पहनकर दूसरे भाई की सहायता करता है, तो उसे अपराधी बताया जाता है। परीक्षा में भाई के भले के लिए अपने ज्ञान का मौन समर्पण करने पर उसे मुन्नाभाई जैसे गुंडे की श्रेणी में ला खडा कर दिया जाता है।

हमारी संस्कृति रही है कि भाई भाई के काम आए। मुंहबोले भाइयों तक ने वक्त पड़ने पर एक-दूसरे की मदद की है। लेकिन समय ने अब ऐसी करवट बदली है कि ऐसा करने नहीं दिया जाता है। यह उचित समय है, जब हम भ्रातृ प्रेम की महान परंपरा को बचाने के लिए विमर्श की शुरुआत कर सकते हैं।

ब्रजेश कानूनगो